विपरित प्राथमिकताओं का विपरीत प्रभाव स्वाभाविक

व्यक्ति तीन प्रकार के होते हैं (1) शरीफ (2) समझदार, (3) चालाक। समाज में तीनों प्रकार के लोग रहा करते हैं। समाज में शरीफ लोगों का प्रतिशत पंचान्नवे से उपर, चालाक लोगों का पांच से कम तथा समझदार लोगों का नगण्य होता है।

समाज पर शासन व्यवस्था का व्यापक प्रभाव पड़ता है। यह बात पूरी तरह गलत है कि समाज का शासन व्यवस्था पर प्रभाव पड़ता है। सच यही है कि समाज का शासन व्यवस्था पर प्रभाव पड़ता है। सच यही है कि शासन व्यवस्था अपनी असफलता छिपाने के लिये ही यह असत्य प्रचारित किया करती है। शासन व्यवस्था में या तो शरीफ लोग बैठ पाते हैं या चालाक। समझदार व्यक्ति वहॉ तक यदा कदा ही पहुँचते हैं। शरीफ लोग यदि बैठ गये तो समाज में अव्यवस्था फैल जाती है। वे स्वयं भी डूब जाते हैं और समाज भी परेशान हो जाता है। यदि चालाक बैठ गये तो स्वयं तो मालामाल हो जाते हैं किन्तु समाज डूब जाता है। स्वतंत्रता के बाद संविधान निर्माताओं में अधिकांश लोग शरीफ थे। न उनमें चालाकी थी न समझदारी। उन्हें राजनीति शास्त्र का तो ज्ञान था ही नहीं, समाजशास्त्र का भी ज्ञान कम ही था। किन्तु गुलामी से मुक्त हुए भारत की यह मजबूरी थी कि उसे ऐसे शरीफ लोगों पर ही यह काम सौंपना पड़ा जिनकी त्याग तपस्या भले ही जितनी भी प्रशंसनीय हो किन्तु व्यवस्था में आवश्यक चतुराई का तो अभाव था ही। यही कारण था कि उन्होंने समाज को बीमार और कमजोर मानकर राजनेताओं को ऐसा डाक्टर घोषित कर दिया जो मरीज की बिना सहमति के भी उसका इलाज करने की कानूनी शक्ति रखता हो। वे न तो स्वदेशी संविधान बना सके न ही संविधान में कोई मौलिक समाज शास्त्रीय सोच डाल सकें। दुनिया के संविधानों को लेकर उसके प्रावधानों को मिला दिया और उसी में से काट छांट कर बने प्रावधानों को मौलिक आर सर्वश्रेष्ठ संविधान कहना शुरू कर दिया।

भारत की शासन व्यवस्था में जो भी लोग बैठे उनमें प्रारंभिक काल में बैठने वाले अधिकांश लोग चालाक न होते हुए भी समाज व्यवस्था से डरते थे। उन्हें लोक लाज का डर था। लेकिन इंदिरा जी ने यह समझ लिया कि भारत का यह संविधान चालाकी के लिये अच्छा माध्यम है। उन्होंने सत्ता में चालाकी का भरपूर प्रयोग किया और प्रशंसा अर्जित की। इंदिरा जी के शासन काल में भारत का जो सामाजिक पतन हुआ वह ऐतिहासिक ही कहा जाना चाहिये। उसके बाद तो भारत की राजनीति पूरी तरह एक सत्ता संघर्ष का खुला मैदान बन गई, जिसने किसी भी प्रधानमंत्री को स्थिर होने ही नहीं दिया।

शरीफ राजनीतिज्ञ समस्याओं का समाधान कर नहीं पाता और धूर्त कर सकता है लेकिन करता नहीं। समझदार व्यक्ति या तो वहाँ तक पहुँच नहीं पाता और यदि पहुँच भी गया तो संविधान उसकी राह का रोड़ा बन जाता है। यही कारण है कि मनमोहन सिंह, अटल जी, विश्वनाथ प्रताप सिंह और मुरार जी सरीखे लोग भी सफल नहीं हो पाये। मैं पूरी तरह आश्वस्त हूँ। कि यदि लालू प्रसाद, मुलायम सिंह, अजीत जोगी, जयललिता, अर्जुन सिंह या रामविलास पासवान को यह पद मिल जावे तो वे अधिक सफल हो सकते हैं। समाज की स्थिति क्या होगी इसकी चिन्ता करने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। राजनीति में सफलता और प्रशंसा प्राप्त करने के सफल तरीकों का इन सबको खूब ज्ञान है। समाज को बांटकर वर्ग विद्वेष फैलाना और अपनी सफलता के मापदण्डों को बिल्कुल उलट कर रखना उनकी सफलता के खास राज होते हैं। समाज को बांटकर रखने की नीति पर अलग से चर्चा होगी। आज तो मुख्य चर्चा प्राथमिकताओं के विपरितकरण पर होनी है।

समाज की समस्याएँ पांच प्रकार की होत हैं (1) वास्तविक, (2) कृत्रिम, (3) प्राकृतिक, (4) भूमण्डलीय, (5) सामाजिक। दुनिया का कोई भी समाजशास्त्री इन पांच समस्याओं के समाधान का यही क्रम रखना चाहेगा किन्तु राजनीति शास्त्र इस क्रम को बिल्कुल पलट कर विपरीत कर देता है। ये सबसे अधिक शक्ति सामाजिक समस्याओं और भूमण्डलीय समस्याओं के समाधान में लगते हैं। तथा सबसे कम वास्तविक और कृतिम समस्याओं के समाधान पर। एक बार शुरू शुरू में ऐसा क्रम परिवर्तन में कठिनाई आती है किन्तु बाद में तो इतनी सुविधा हो जाती है कि समाज के आमलोग भी समस्याओं के इसी क्रम को वास्तविक मानने लग जाते हैं। जब भारत गुलाम था तब राजा राम मोहनराय, ब्रम्ह समाज आदि ने सामाजिक समस्याओं पर अपना अधिक ध्यान इसलिये केन्द्रित किया कि हम अन्य समस्याओं कुछ कर ही नहीं सकते थे। किन्तु जब हम शासन में आये तब सामाजिक समस्याओं को सबसे उपर रख कर हमने भारी भूल कर दी। सब जानते हैं कि चोरी, डकैती, लूट, बलात्कार, मिलावट, कमतौल, जालसाजी, धोखाधड़ी, हिंसा, आतंकवाद आदि वास्तविक समस्याएँ हैं और छुआछूत, बालविवाह हेरोइन, गांजा, बालश्रम, वैश्यावृति, जमाखोरी, जातीय, असमानता आदि सामाजिक समस्याएँ हैं। प्राथमिकताओं के क्रम में कौन समस्या कितनी गंभीर है यह सामान्य से सामान्य व्यक्ति को भी दिखाई देता है किन्तु राजनताओं को इसलिये नहीं दिखता कि न दिखने में ही उनकी सभी समस्याओ का समाधान छिपा है। न्यायालय तक की प्राथमिकताएँ बिल्कुल इसी तहर बदल जाया करती है। अभी एकाएक हमारे न्यायालयों को व्यवस्थित दिल्ली का प्रेम जगा। शासन का ध्यान आकृष्ट करने की जगह उसने कार्यपालिका की भूमिका अपना कर धड़ाधड़ तानाशाही आदेश देने शुरू कर दिये। न्यायालय की नजर में लाखों अवैध निर्माण दिल्ली वासियों के साथ अन्याय था। मुझे दुःख होता है कि न्यायालय गैर कानूनी और अन्याय जैसे साधारण शब्दों का भी साफ अन्तर नहीं समझ सका और उसके अवैध निर्माण को अन्याय घोषित करके तुड़वाना गिरवाना शुरू कर दिया। जो न्यायालय इतना ओवर लोडड है कि वह हत्या और बलात्कार जैसे गंभीर आपराधिक मामलों मैं भी कई कई वर्ष तक फैसला नहीं दे पाता उसी न्यायालय ने दिल्ली मकान तोड़ो मामले में जितनी तीव्र गति दिखलाई उससे कहीं न कहीं न्यायिक अति सक्रियता की गंध तो आत ही है। अब संसद ने उक्त अवैध निर्माणों को रोक दिया। प्रश्न उठता है कि जो मकान टूटे और तोड़ फोड़ में जितनी न्यायिक, प्रशासनिक और विधायी शक्ति का अपव्यय हुआ, पूरे भारत के वातावरण में जो एक टकराव का वातावरण बना उसका दोषी कौन ? अवैध निर्माण यदि उस समय अन्याय थे तो क्या कोई संसद अन्याय को न्याय घोषित कर सकती है ? मेरे विचार में नहीं। विधायिका अवैध को वैध कर सकती है, अन्याय को न्याय नहीं। दिल्ली की सम्पूर्ण तोड़फोड़ करना और बीच में ही रोकने में से कोई न कोई एक काम तो गलत था। दोनों तो सही हो ही नहीं सकते। कौन सही था कौन गलत यह तो खोज अलग से हागी किन्तु दिल्ली वालों की तो सही गलत के निर्णय में अरबों की व्यक्तिगत और सामाजिक क्षति हो ही गई।

यह हमारो प्राथमिकताओं का ही कमाल है कि राहुल महाजन और कश्मीर यौन शोषण प्रकरण अभी शासन की सफलताओं के उच्च स्थान पर हैं। कई कई दिनों से पुलिस सी.बी.आई. और न्यायालय इन प्रकरणों में पूरा प्रयास कर रहे हैं कि दूध का दूध और पानी का पानी हो कोई भी अपराधी किसी भी हालत में बच न जावे क्योंकि बड़ी मुश्किल से तो एक मौका हाथ आया है जिसमें अपनी अपराध नियंत्रण की छवि बच सकती है । मैंने टी.वी. पर जिस तरह दोनों प्रकरणों में पुलिस की सक्रियता और सफलता की संतुष्टि का भाव देखा तो मेरे मन में एकबारगो आया कि ऐसे सफल पुलिस वालों को तो कुछ दिनों के लिये छत्तीसगढ़ के नक्सलवादी क्षेत्रों में तैनात कर देना चाहिये जहाँ ऐसे योग्य लोगों की गंभीर जरूरत है। समझ में नहीं आता कि कहाँ तो कश्मीर में विदेशी आतंकवाद रोकने में विफल सेना या पुलिस तथा कहाँ यह सेक्स स्कन्डल। कहाँ तो दिल्ली में बढ़ते आतंकवादी हत्या और बलात्कार आर कहाँ राहुल महाजन का अवैध ड्रग्स सेवन। कोई तुलना नहीं है जो इतना व्यापक प्रचार और सक्रिय का ताना बाना बुना जाय। किन्तु कोई

इसमें क्या कर सकता है क्योंकि बदली हुई प्राथमिकता का सवाल ह जिसमें डकैती और अवैध हेरोइन या बलात्कार और यौन शोषण में अवैध हेरोइन और यौन शोषण को अधिक गंभीर बनाने का एक प्रचलन सा चल पड़ा है।

सब जानते हैं कि श्रम और बुद्धि में श्रम का बुद्धि के द्वारा शोषण हो रहा है। सब जानते हैं कि शहरीकरण एक गंभीर समस्या बनी हुई है। यह भी सबको पता है कि श्रमजीवी किसान और बुद्धिजीवी किसानों के बीच सुविधाओं का भारी फर्क है किन्तु दुख होता है जब सम्पूर्ण भारत में श्रम के पक्ष में कोई आवाज न उठाकर हर आवाज बुद्धि के पक्ष में ही उठती है। बेरोजगारी का समापन श्रम प्रधान क्षेत्रों से ही संभव भी है और न्यायसंगत भी। बुद्धि प्रधान क्षेत्रों से बेरोजगारी की समस्या दूर करना न संभव है न न्यायसंग और लोग यदि श्रम के स्थान पर शिक्षा को महत्व दें तो उहें नासमझ कहा जा सकता है किन्तु मुलायमसिंह जी ने बेरोजगारी भत्ता के साथ शिक्षा की अनिवार्यता को जोड़कर बहुत गलत कार्य किया हैं। राम मनोहर लोहिया के भक्त होने का दावा करने वाले मुलायम सिंह जी का ऐसा लोहिया विरोध तो आश्चर्यजनक है। साठ रूपया प्रतिदिन के लिये भी रोजगार न मिलने से परेशान श्रम जीवी और उचित रोजगार की प्रतिक्षा में प्रयासरत उच्च शिक्षित बुद्धिजीवी के बीच किसे बेरोजगारी भत्ता देना न्यायसंगत है यदि इतनी छोटी बात भी मुलायम सिंह नहीं समझते तो उन्हें राजनीति के चाहे छव्वीसों अक्षरों का जितना ज्ञान हो किन्तु समाजशास्त्र का ए.बी.सी. भी उन्हें नहीं मालूम । यही हाल हमारे मनमोहन सिंह जी का है। बहुत गर्व से उन्होंने बम्बइ में कहा कि अब तक हमने शहरों का विकास करेंगे। आप भारत के प्रधानमंत्री हैं। आपका काम शहरों क विकास करना नहीं है। आप या तो सबको अपना अपना विकास करने दीजिये या यदि आपको किसी की मदद करनी ही हो तो रामजीवी ग्रामीण किसान की कर दें। ऐसा तो है नहीं कि भारत में श्रमजीवी ग्रामीण किसानों का अभाव है। गांवों की आधी से अधिक आबाद ऐसे ही लोगों की है। ऐसे श्रम जीवी ग्रामीण किसानों की चिन्ता छोड़कर मनमोहन जी शहरी समस्याओं के प्रति इतने अधिक संवेदनशोलता क्यों हुए यह मेरी समझ में तो बिल्कुल नहीं आया।

मेरे एक साथी शिक्षा के प्रति बहुत भावुक हैं। शिक्षा सबको मिले और शिक्षा सबकी समान हो य उनके आंदोलन के मुद्दे हैं। मैं उनसे कई बार चर्चा के बाद भी नहीं समझ सका न ही समझा सका। शिक्षा पर शासन को तब तक कोई खर्च नहीं करना चाहिये जब तक भारत में एक भी व्यक्ति अभाव के कारण भूखा है या साठ रूपये दैनिक पर रोजगार अप्राप्त है। शिक्षा प्रगति का माध्यम है किन्तु कुछ लोगों की प्रगति कुछ अन्य भूखे बेरोजगारों की कीमत पर उचित नहीं हो सकती । सम्पूर्ण भारत का प्रत्येक व्यक्ति एक सौ रूपया प्रतिदिन का राजगार कर सके तो वह या उसके बच्चे शिक्षित भी हो सकते हैं किन्तु भारत के प्रत्येक व्यक्ति को सारा जोर लगाकर शिक्षित भी कर दिया जाए तो वे साठ रूपया प्रतिदिन का भी रोजगार नहीं पा सकते क्योंकि शिक्षा में बेराजगारी बढ़ाने की तो क्षमता हैं, दूर करने की नहीं। ग्रामीण श्रम ही एक मात्र आधार है जो बेराजगारी और गरीबी दूर कर सकता है। मैं उनकी समान शिक्षा से भी सहमत नहीं। शासन अपना पैसा उनकी शिक्षा पर क्यों खर्च करे जो स्वयं सक्षम हैं। अपनी सम्पूर्ण क्षमता को सबको समान शिक्षा पर थोड़ा थोड़ा खर्च करने की अपेक्षा यदि अक्षम लोगों पर अधिक खर्च करके सक्षमों को अपने प्रयास पर निर्भर रहने दें तों अच्छा है। वैसे मैं तो इस मत का हूँ कि श्रमजीवी ग्रामीण किसानों को रोजगार गारंटी योजना को शिक्षा से भी अधिक प्राथमिक कार्य समझना चाहियें।

अभी महिलाओं के सम्बंध में सेना के एक अधिकारी के बयान ने ऐसा भूचाल पैदा किया कि बेचारे को क्षमा मांगनी पड़ी। मैं उनके बयान के औचित्य पर चर्चा न करके सिर्फ यह जानना चाहता हूँ कि क्या उनका बयान इतना अधिक हानिकर था कि इतना ऊंचा स्थान दिया जाय ? मेरे विचार में तो सुषमा स्वराज देश की नेता हैं सिर्फ महिलाओं की नहीं किन्तु जिस तरह सुषमा जी ने पहल की उससे तो यही लगा कि निराश सुषमा अब महिला नेता बनन की ओर अधिक प्रयत्नशील हैं। भूखी बेराजगार श्रमिक महिलाओं के विषय में चिन्ता करने के स्थान पर सुषमा जी ने एक महिला सैनिक अफसर के मामले में इतनी गंभीर पहल की यह सब यही दर्शाता है कि हमारी प्राथमिकताएँ पूरी तरह उलट गई हैं।

मैं व्यक्तिगत रूप से इस मत का हूँ कि कम महत्व की प्राथमिकताओं को अपने चमचों से आगे रखवा कर उनका समाधान करवाने के प्रयत्न सस्ती लाकप्रियता में भले ही सहायक हों किन्तु वास्तविक समस्याओं के समाधान में तो बाधक ही होते हैं। अब तक इस ओर किसी का ध्यान न होने से सब चालाकी आराम से चल जाती थी किन्तु अब तो हम लोगों कि ने इस चालाकी की पोल खोलनी शुरू कर दी है। अच्छा होगा कि समय रहते देश के राजनेता अपनी उल्टी प्राथमिकताओं को सीधा कर लें अन्यथा यदि जनमत ने उन्हें प्राथमिकताएँ सीधी करने के लिये मजबूर किया तो वह दिन उनके लिये अधिक कष्ट कारक होगा।

प्रश्न (1) श्री राधा कृष्ण गेरा, ए 243/2, आशोक विहार, दिल्ली ।

मैं बहुत समय से ज्ञान तत्व को पढ़ रहा हूँ। भिन्न–भिन्न पत्रोत्तर भी पढ़ता आया हूँ। परन्तु मुझे कही भी गुण विचार नहीं दिखा न ही लक्ष्य प्राप्ति की ओर कुछ भी संकेत मिलता है।

अंक 113 पढ़ा उसमें मुझे मात्र सुन्दर स्वप्न ही दिखा। आम आदमी के जीवन स्तर एवं टैक्सों की कमी आदि का विचार एक छलवा दिखाई देता है, वास्तविकता से कोसो दूर है। यदि आपकी स्कीम का अकंलन करना है तो आप स्पष्ट करें कि देश का अनुमानित आय–व्यय कितना होगा। देश का बजट कितना होगा। आम आदती को किस प्रकार का सुख मिलेगा।

पिछले अंक में आपने मुस्लिम कट्टरवाद से संघ परिवार की तुलना की थी। जिसमें लगा कि मुसलमान अपने उद्देश्य के लिए ईमानदार है। संघ नहीं। संघ बातुनी ह, उसकी कथनी और करनी में अंतर है। ऐसे लोगों से वसुधैव कुटुम्बकम की आशा करना मूर्खता होगी।

टक्सों की भरमार आम आदमी को बेईमान बनाती है और घूसखोरी को जन्म देती है।

सरकार ने काम के बदले अनाज की ग्रामीण योजना चलाई थी, परन्तु वह सफल नहीं हुई। वास्तव में शारीरिक श्रम करने वाले घटते जा रहे हैं जिसकी जगह मशीन ले रही है। सभी सुख, सुविधा, धन आदि का प्रबल इच्छुक तो है पर उसके पाने के लिए ईमानदारी से प्रयत्नशील नहीं है। शारीरिक श्रम महंगा हो रहा है तो अनाज के बदले काम कोई क्यों करेगा। वे सभी ऐसे कार्य मशीनों द्वारा कराये गये और अनाज बेचकर भरपाई की गइ। उसके लिए पंचायतों पर लांछन लगे। समय सीमा में कार्य करना और सरकार को दिखाना था। ऐसी स्कीमों से प्रतीत होता है, स्कीम बनान वाले वास्तव से कितना अनभिज्ञ है अथवा उनकी सोच शून्य हैं।

यदि सामाजिक व्यवस्था का तुलनात्मक विश्लेषण स्वतंत्रता से पूर्व एवं पश्चात् में करेंगे तो पायेंगं कि –

(1) जीवन सदा था, विश्वास का था। फलस्वरूप खेती की उपज में से सब जाति को लोगों का हिस्सा मिलता था। सभी समय समय पर खेती वालों को संवाएँ प्रदान करते रहते थे।

(2) सभी की आवश्यकताएं पूर्ण होती रहती थी। समय समय सभी एक दूसरे की यथा योग सहायता करते थे।

(3) कृषि आधारित ग्राम जीवन सुरक्षा शांति का प्रतीक बना हुआ था।

(4) सामाजिक बोझ ब्रह्म समाज का था।
(5) स्वतंत्रता के पश्चात सामाजिक बोझ नया रूप लेकर आया और दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। कितनी सामाजिक संस्थाएं, धार्मिक संस्थार्ये, मन्दिर, मस्जिद, गरूद्वारे, मठ मतान्तर खड़े हो गए जो समाज का शोषण कर रहे हैं। राज्य की बाग डोर भी अक्षम लोगों के हाथों में चली गइ। कार्यपूर्ति एवं लक्ष्य प्राप्ति की इच्छा रखना ? अपने आपको धोखा देना होगा।

स्वतंत्रतापूर्वक की कार्यशैली को देखे तो वह कितनी न्याय संगत थी। गांव में एक नम्रदार सरकारी लगान इकट्ठा करता था और समय पर जमा करता था। उसमें से कुछ प्रतिशत प्राप्त करता था सरकारी खजाने पर बोझ कम था।

सर पंजाब में (सिमें पास्तिान भी था) में छ मंत्री थे। अब उस पंजाब को 6 भाग हो चुके है, जिसमें अनुमानतः (500–1000) विधानसभा सदस्य होंगे और सैकड़ों मंत्री भी होंगे। मेरा प्रयास इतना करने का है कि जब तक न्याय संगत तथा खर्च पर काबू नहीं रखेंगे तो नये–नये रूपों में टैक्स लगते रहेंगे। एक ईमानदार टैक्स दासता पिसता रहेगा। आये दिन घोषणा होती है और उन पर बिना विचारे खर्च किया जाता है। जिसको मिल बांट लिया जाता है। जिन लोगों के लिए दुहाई दी जाती है वहां तक पहुँचना असम्भव ही लगता है।

बस ऐसा लगता है कि व्यवस्था तो क्या बदलेगी, अपनी अपनी डफली अपना अपना राग अलाप कर सभी चल जायेंगे। गरीब का अल्लाह मालिक ह। जैसा भी नारा था लोग कहते है कि '' इन्दिरा हटाओं '' मैं कहती हूँ गरीबी हटाओ'' वाली बात है। इसमें वह सत्ता में आई और सत्ता का सुख भोग गई। ऐसे ही हम गरीबों के मसीहा बनना चाह रहे हैं।

हिन्दुत्व के रखवालों की कथनी और करनी में अंतर है। सत्ता में आये परन्तु अपना कार्य को लागू नहीं कर सके। व्यक्तिगत अनुभव बताते हैं कि ये कला धन घूस के पोषक है तो साधारण समाज के व्यक्ति का क्या हित देखेंगे। जरा सोचिये श्री खुराना के मुँह में तो दात नहीं पेट में आंत नहीं, परन्तु महत्वाकांक्षा कम नहीं । ऐसे लाग हिन्दुत्व का क्या पोषण करेंगे। ? वाक्पटुता से काम नहीं चलता उसके लिए निष्पक्ष सेवा की आवश्यकता है। बिनोबा जी भी ऐसे ही थे। अन्याय के विरूद्ध में जनहित में आवाज उठानी थी। मौन धारण कर लिया। ऐसे लोग धूर्त है। भूदान में भूमि बांटी तो गई परन्तु उसके पट्टे उनके नाम नहीं कराया। अतः जमीदारों ने अपना मालकाना जितलाना शरू कर दिया । अधूरे काम के लिये सिर्फ वाह वाहो लूटी गई।

मेरी यह भाषा कटूँ है, जिससे आपका मनोबल आहत न हो, मैं अपनी लेखनी यही विराम देता हूँ। यदि उचित लगे तो ज्ञान तत्व में स्थान दे दना। अन्यथा फाड़ कर फेक देना ।

उत्तरः–आप ज्ञान तत्व पढ़ते हैं यह खुशी की बात है और लिखते हैं यह तो और भी ज्यादा खुशी की बात है। आपने टैक्स कम करने की बात कही। मैने भी अंक एक सौ तेरह में वही कहा है। आपने लिखा कि संघ बातुनी है। उसकी कथनी और करनी में अंतर है। ऐसे लोगों से वसुधैव कुटुम्बकम की उम्मीद मूर्खता होगी। मैने भी यही लिखा है। आपने मदनलाल खुराना और वि. प्रताप सिंह जीसक के कार्य से निराशा व्यक्त की। मैने भी कभी उन्हें आशा का केन्द्र नहीं कहा। आपने लिखा कि टैक्सों की भरमार व्यक्ति को बेइमान बनाती है, शारीरिक श्रम का स्थन मशीनें ले रही हैं स्वतंत्रता के पूर्व की जीवन प्रणाली में अब भारी बदलाव आया है, सरकारी खर्च बहुत बढ़ गये हैं आदि। आपके सभी विचारों से मेरी सहमति हैं फिर भी आपको मेरे विचारों में कोई सार तत्व नहीं दिखा यह आश्चर्यजनक है। यदि मेरे विचारों में कुछ गुण नहीं है तो आपको उनसे हटकर कुछ गुण तत्व देना चाहिये था तब मुझे भी सुविधा होती। यदि आपके विचार में मेरा मार्ग लक्ष्य से भटक रहा है तो मुझे खुशी होगी यदि आप मार्ग दर्शक करेंगे।

आपने दो बातें और की हैं (1) देश का मेरी योजना अनुसार अनुमति बजट क्या है ? (2) भारत में श्रम मूल्य अधिक बढ़ने से श्रम पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है तथा श्रम मरने वाले घट रहे हैं। मैने अपनी सम्पूर्ण अर्थनीति में सिर्फ दो खर्चों का प्रस्ताव किया है, (1) प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष पांच हजार रू. का जीवन भत्ता, (2) सेना पुलिस न्याय वित्त विदेश विभागों का व्यवस्था खर्च। जीवन भत्ता करीब पचास खरब रूपया खर्च होगा। पांच विभागों में से विदेश और न्याय तो अपनी अपनी व्यवस्था कर लेंगे। हमें वित्त, सेना और पुलिस पर खर्च करना होगा जो करीब बीस खरब हा सकता है। कुल खचं सत्तर अरब मानकर चलें। बिजली, डोजल, पेट्रोल, कैरोसिन, कोयला आदि का मूल्य दो या ढाई गुना करने से करीब पचास खरब रूपया आयेगा। पूरे भारत में पांच विभागों की सम्पत्ति को छोड़कर शेष सम्पूर्ण चल अचल सम्पत्ति का वर्तमान मूल्य एक हजार खरब का अनुमान करें तो उसके दो प्रतिशत कर से यह राशि पूरी हो जायगी। एक हजार खरब का अर्थ है प्रति व्यक्ति एक लाख रूपया। यह सम्पत्ति पांच विभाग को छोड़कर सम्पूर्ण सरकारो तथा निजी सम्पत्ति को मिलाकर है। मेरे कुछ विद्वान मित्र तो सम्पत्ति का मूल्य इससे कई गुना अधिक आकलित करते हैं किन्तु मेरे विचार में सम्पत्ति के बाजार मूल्य धड़ाधड़ गिरने लगेंगे इस आधार पर मैंने कम मूल्य आकलन किया है।

श्रम मूल्य की घट बढ़ एक आर्थिक सिद्धांत है जो पश्चिम और साम्यवादी विचारकों की कुछ किताबों के निष्कर्षों को सूत्र मानकर चलने से गडबड़ा सकता है। आज भारत में यही हो रहा है कि अर्थ शस्त्र पर कोई भी चर्चा मौलिक स्वरूप ग्रहण न करके कुछ विदेशी विद्वानों के कथनों को अंतिम सूत्र मानकर उसके इर्द गिर्द घूमने लगती है। सब जानते हैं कि किसी वस्तु का मूल्य बढ़ेगा तो मांग घटेगी और मांग घटेगी तो मूल्य घटेगा। इससे यह प्रमाणित होता है कि यदि आपको मूल्य बढ़ाना है तो मांगा बढ़ानी होगी और मांग बढ़ाने के लिये मूल्य घटाने होंगे। मूल्य वृद्धि के प्रयत्न मांग को कम करते हैं और उसका परिणाम होगा बेरोजगारी वृद्धि। भारत एक ऐसा देश है जहाँ के अर्थशास्त्री और सरकारें असंभव को संभव करने पर तुली हैं तभी तो मांग बढ़ाये बिना श्रम मूल्य वृद्धि के प्रयास हो रहे हैं। अभी भारत में साठ रूपये से भी कम मूल्य पर काम करने वालों की इतनी बड़ी फौज है कि भारत सरकार ने भी हथियार डाल दिये हैं और प्रति परिवार एक सदस्य, वर्ष में सौ दिन तथा शहरी बेराजगारों को को निकालकर घाषणा की है। भारत की सम्पूर्ण बरोजगारी का करीब दस से पंद्रह प्रतिशत ही साठ रूपये में रोजगार पा सकेगा बाकी सब तो बेरोजगार ही रहेंगे। यदि भारत सरकार अपने नकली श्रम मूल्य की घोषणा को वापस ले ले तो उसे क्या कहेंगे ? दुनिया जानती है कि भारत में साठ रूपया से कम में भी लेग बेरोजगार घूम रहे हैं किन्तु हमारी सरकारें श्रम का मूल्य दुनिया को दिखाने के लिये कहीं पचहत्तर तो कहीं एक सौ घोषित कर रही हैं और प्रतिवर्ष उसे बढ़ाकर अपनी पीठ स्वयं थपथपाती हैं। विदेशी धन पर पलने वाले कुछ स्वदेशी मानवतावादी सरकार के कदमों की खूब प्रशंसा भी करते हैं। सच्चाई यह है कि सरकारों को तत्काल वर्तमान घोषित श्रम मूल्य को कम कर देना चाहिये तथा शिक्षित बेरोजगारी पर किये जाने वाले खर्च को पूरी तरह बंद करके रोजगार गारंटी मद में डाल देना चाहिये।

आपने विनोबा जी के विषय में जिस भाषा का प्रयोग किया वह आपकी ओछी मानसिकता का प्रतीक है। अनावश्यक बड़बोलापन अपनी छवि खराब करता है। विनोबा जी के कई विचारों का मैं विरोधी हूँ किन्तु मैं उन्हें धूर्त नहों मानता और मेरे विचार में आपने भी उनकी धूर्तता की कोई व्यख्या किये बिना धूर्त लिखकर मेरे मन में यही धारणा पैदा की है कि आपकी जबान गंभीर और संतुलित नहीं है। अच्छा होगा यदि कोई टिप्पणी करने के पूर्व उसकी गंभीरता को क्षति न होने दें। मैंने भी देश के आय व्यय संबंधी जो भी आंकड़े दिये हैं वे बिल्कुल अनुमानित हैं। मैं इस संबंध में विश्वसनीय आंकड़े प्राप्त होते ही प्रकाशित करूँगा।

(2) श्री सुरेश चन्द्र दुबे, 70 पत्रकार कालोनी , इन्द्रौर, मध्यप्रदेश ।

ज्ञान तत्व अंक एक सौ बारह में आपने दिल्ली में तोड़फोड़ का विरोध किया। किन्तु यह भी विचारणीय है कि इतने बड़े बड़े शहर बसाये और सुरसा के मुँह की तरह बढ़ाये ही क्यों जा रहे हैं कि आसपास के गांवों की कृषि योग्य भूमि को आवासीय बनाने की आवश्यकता आ पड़े। इस तरह शहर बढ़ेंगे तो जन जमाव की समस्याएँ तो पैदा होंगी ही। जन जमाव रोकने की अपेक्षा तोड़फोड़ रोकने की बात करना कितना उचित है ?

डॉ. निर्मला लाल जैसी समाज सेविका आपके आंदोलन के सम्पर्क में है यह प्रसन्नता की बात है। उन्होंने जो भी लिखा वह ठीक लिखा है। भारत की अनेक हिन्दू लड़कियाँ विदेशो हाथों में जाने का कारण शासकीय उदासीनता के साथ साथ सामाजिक कमजोरियाँ भी हैं। मेरे मित्र के लड़के ने मित्र के विरोध के बाद भी एक मुसलमान लड़की से विवाह कर लिया। मैने लड़के का समर्थन किया तो मेरे मित्र ने अपने कड़के लड़की का विवाह इस्लामिक पद्धति से किया और मैने असहमति व्यक्त कर दी तो मेरे उस लड़के के परिवार से भी संबंध खराब हो गये। मुझसे मेरे मित्र से भी संबंध बिगड़े और लड़के से भी। मैं समझता हूँ कि इसमें कहीं न कहीं सामाजिक दोष है।

अपने महिलाओं की योग्यता पर भी चर्चा की है। मेरे परिवार में सभी बच्चे बच्चियाँ लगभग समान शिक्षित में विवाहित हैं। मेरी बहू लड़के से अधिक पढ़ी लिखी है। विवाह बिना दहेज के हुए हैं। पूरा परिवार सुखी है। परिवार महिला से अधिक पुरूष की येग्यता का आधार अथार्पार्जन क्षमता से जुड़ा हुआ है। समाज में परिवार प्रमुखों द्वारा ही रिश्ते तय करने का रिवाज है जिसमें लड़के लड़की की सहमति स्वीकृति न लेकर मात्र औपचारिक अनुमति ले ली जाती है। ऐसे रिश्तों में योग्यता के आकलन को गौण करके सामंजस्य को मुख्य मान लिया जाता है। मेरे विचार से अधिक योग्य महिलाओं से विवाह का स्वागत करना उचित होगा।

ग्राम पंचायतों को स्वायत्त स्वरूप देने पर गांवों में सामन्तवादी प्रवृति के लोग कमजोर वर्ग के लोगों से अन्याय करेंगे तो उन्हें कौन रोकेगा ? गरीबों, आदिवासियों, हरिजनों, या अन्य कमजोर वर्गों की सुरक्षा का कोई न कोइ उपाय तो होना आवश्क ही है।

उत्तरः—शहरों का बढ़ना एक बीमारी है जिसके दुष्परिणाम हैं विषमता और अव्यवस्था। शहरों की आबादी तीन कारणों से अधिक बढ़ती है (1) गांवों में अशांति, (2) गांवों की अपेक्षा शहरों में रोजगार के अधिक अच्छे अवसर, (3) गांवों की अपेक्षा शहरों में अधिक सुविधाएँ। सुविधाओं के कारण बड़े लोग और रोजगार के कारण गरीब शहरों की ओर भागे चले आ रहे हैं। रोजगार की विषमता और सुविधाओं की विषमता कम करने की आवश्यकता है जिससे शहरों के लोग गांवों की ओर जाने का रूख करें। किन्तु बस चुके लोगों को दो मंजिल की जगह तीन मंजिल बना लेने मात्र से या रिहाइशी क्षेत्र में व्यापार करने के कारण तब तक तोड़ फोड़ उचित नहीं जब तक विधायिका यह घोषित न कर दे कि निकट भविष्य में दो मंजिल को तीन या रिहाइशी को व्यापारी क्षेत्र में नहीं बदलना है। यह कानून का पालन करना विधायिका और कार्यपालिका का काम है न्याय पालिका को इसे प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं बनना चाहिए। मैं इस मत का हूँ कि अब भी समय है कि शहरों की बेतहाशा आबादी वृद्धि पर विधायिका को सोचकर इसका समाधान निकालना चाहिये और यदि स्वयं समझ न आवे तो समाज शास्त्र के ज्ञाताओं से सहायता लेनी चाहिये।

बहन निर्माला जी के तथा आपने भी हिन्दू समाज की इस कमजोरी के दुष्परिणामों की ओर घ्यान खींचा है कि हिन्दू संख्या विस्तार की प्रतिस्पर्धा से दूर रहना चाहते हैं। इतना दूर कि इनकी यह दूरी ही इनकी कमजोरी बन जाती है। हिन्दुओं की सोच सामाजिक टकराव टालने के उद्देश्य से तो आदर्श स्थिति होती यदि और धर्म भी इसका आंशिक भी पालन करते अर्थात् यदि ईसाई, मुसलमान, हिन्दुओं के समान दूसरे धर्म वालों के लिये अपने द्वार बन्द नहीं भी करते किन्तु प्रोत्साहन से दूर रहते तो यह टकराव टल सकता था किन्तु इसाई मुसलमानो का येन केन प्रकारेण हिन्दुओं के धर्म परिवर्तन के प्रयास जले पर नमक छिड़कने का काम करते हैं। समझदार हिन्दू भी उनके प्रयासों के विरूद्ध हिन्दू पद्धति को गलत मानने लगता है जैसा आप लोग भी समझ रहे हैं। स्वभाविक है कि इससे साम्प्रदायिक हिन्दुओं को मुसलमान और इसाइयों के विरूद्ध सामान्य हिन्दुओं को भड़काने में मदद मिलती है। यह चिन्ताजनक स्थिति है। किन्तु यदि इस सम्बन्ध मे हिन्दुओं को जागरूक करने का प्रयत्न भी करें तो हिन्दू धर्म के संख्या विस्तार पर तो इसका अच्छा प्रभाव पड़ेगा किन्तु सामाजिक टकराव बहुत बढ़ जायगा। दूसरी ओर अन्य धर्मावलम्बी खासकर मुसलमान अपनी नीतियों मैं संशोधन के लिये तैयार नहीं हैं क्योंकि उनका तो उद्देय ही हिन्दुओं की कमजोरी का काम उठाकर अपना संख्या विस्तार करना है। ऐसी हालत में हमें एक नया मार्ग निकालना पड़ेगा और भारत में किसी भी प्रकार के धर्म परिवर्तन की प्रतिस्पर्धा को कानून द्वारा रोकना होगा। हिन्दूओं को भी प्रतिस्पर्धा में मोड़ देने की अपेक्षा प्रतिस्पर्धा के विरूद्ध वातावरण बनाना अधिक अच्छा रहेगा।

आपने पुरूष महिला समानता के पक्ष में समान योग्यता में विवाह की वकालत की हैं समान्यतया आपके इस कथन से में सहमत हूँ। किन्तु समान योग्यता में विवाह की आवश्यकता को जब समाज सुधार के आंदोलन का रूप देने का प्रयास होता है तब आभास होता है कि " परिवार इकाई ' व्यवस्था को कमजोर करने की कीमत पर यह खतरनाक महिला पुरूष समानीकरण का प्रयत्न हो रहा है। यह बात बिलकुल साफ साफ समझने की आवश्यकता है कि समाज महिला और पुरूष नामक दो वर्गों का संघ न है न होना चाहिये जैसा कि अभी हो रहा है। समाज अनेक परिवारों का संघ है जिसमें महिला और पुरूष दोनों शामिल हैं। परिवार से उपर की इकाइयों में महिला और पुरूष की बात करना समाज व्यवस्था को लाभ कम और नुकसान अधिक करेगा। वर्तमान समय में समाज में पुरूष प्रधान व्यवस्था है जिसमें विवाह के समय अधिक योग्य लड़के का कमयोग्य लड़की से विवाह की प्रथा की प्रमुख भूमिका है। अब पुरूष प्रधान सामाजिक व्यवस्था को समाप्त करके महिला पुरूष समानता के प्रयत्न की बात हो रही है। बात करने में तो आदर्श दिखती हैं किन्तु परिणाम पर गंभीर विचार करना होगा। वर्तमान भारत में शिक्षा में महिलाओं की संख्या पुरूषों से दस प्रतिशत कम है। इसका अर्थ यह हुआ कि समान स्तर की शिक्षा प्राप्त महिलाओं की संख्या उसी स्तर के शिक्षा प्राप्त पुरूषों से दस प्रतिशत कम है। यदि खूब सामाजिक जागृति लाकर बिल्कुल समान स्तर पर विवाह कराना शुरू भी कर दें तों अन्त में क्या होगा ? अन्त में कुछ बहुत अधिक पढ़े लड़को को बहुत कम पढ़ी लड़कियां से विवाह करना होगा। जब तक महिलाओं की शिक्षा और योग्यता का तीव्र विकास नहीं होता तब तक महिला समानता के सारे प्रयत्न टूटन और अव्यवस्था के ही आधा होंगे। जो भी लोग महिला समानता आंदोलन में लगे हैं उनके अपने भी परिवारिक टूटन ने प्रवेश कर लिया हैं। बिरले परिवारिक हैं जहाँ पति पत्नी दानों समान स्तर पर बैठकर पारिवारिक निर्णय करते हों।

क्या पुरूष प्रधान व्यवस्था के विरूद्ध महिलाओं में जागृति लाई जावे। मेरा विचार है बिल्कुल नही। वर्तमान पुरूष प्रधान व्यवस्था की जितनी हानियाँ हैं, महिला जागृति के प्रयत्नों से उससे अधिक हानि होगी क्योंकि महिलाओं और पुरूषों को दो वर्ग के रूप में ध्रुवीकृत करना समाज के लिये हानिकर होगा। सबसे अच्छा और सुरक्षित मार्ग यही है कि महिलाओं में शिक्षा और क्षमता का विस्तार किया जाय और उन्हें सम्पत्ति सहित प्रत्येक क्षेत्र में समान कानूनी अधिकार देकर योग्यता के आधार पर समानता के संघर्ष मे आगे बढ़ने दिया जाय।

आपने गांवो में पंचायतों को अधिक अधिकार मिलने से सवर्णों दबंगो द्वारा दलित आदिवासियों के शोषण के खतरे के प्रति सचेत किया हैं आपकी चिन्ता निरर्थक नहीं आप ठीक से विचार करें तो पायेंगे कि जाति शोषण का आधार है। वह पावर अब तक सवर्णों के

पास ही रहा तो पावरफुल सवर्ण शोषण का पर्याय बन गये। किसी भी वर्ग को कोइ विशेष अधिकार मिलता है तो वह अधिकार उस वर्ग के कुछ आपराधिक प्रवृति के लोगों की आपराधिक शक्ति में वृद्धि करता है। मैं प्रत्यक्ष अनुभव किया हूँ कि हमारे शहर के एक सरकारी कर्मचारी ने अपने हरिजन होने का इतना दुरूपयोग किया कि उससे सभी शरीफ सवर्ण भयभीत हो गये। मेरे घर के आसपास के आदिवासियों में से भी दो तीन अपने अधिकारों का ऐसे ही दुरूपयोग करते हैं। हमारे जिले के एक सवर्ण ने एक आदिवासी महिला को ऐसा पटा रखा है कि उस महिला से ज्यादा उस सवर्ण पुरूष का आतंग छाया हुआ है। मैं किसी को भी सब प्रत्यक्ष दिखा सकता हूँ। मेरा मानना है कि पावर जहाँ भी वर्ग विशेष के पास इकट्ठा होगा तो अन्याय का आधार बनेगा। गांव के सवर्ण सरपंच के अत्याचारों से मुक्ति का बिल्कुल आसान तरीका यह है कि पावर सरपंच से भी नीचे परिवार तक जाने दें। जो काम परिवार न कर सके उतना ही श्रम करें। बाकि में पंचायत दखल न दे।

एक प्रश्न और है कि यदि पंचायत में सवर्ण अन्याय करेंगे तो वही सवर्ण प्रधानमंत्री मुख्यमंत्री बनकर तो और अधिक अत्याचार कर सकता है तब उसे कौन रोकेगा ? आपके तर्क के आधार पर भी पावर को इकट्ठा होना लाभदायक कम, हानिकारक अधिक है। इसलिये मेरा आपको सुझाव है कि अधिकार किसी के पास इकट्ठे मत होने दें। सबके अधिकार सबके पास रहें। विशेष आवश्यकता होने पर सब मिलकर किसी को आवश्यक अधिकार दें किन्तु उक्त व्यवस्था पर नियंत्रण सबका हो। किसी वर्ग या जाति विशेष को कोई भी विशेष अधिकार न दें। यह विशेष अधिकार अत्याचार के अवसर पैदा करता है। किसी भी मामले पर किसी वर्ग विशेष के लोगों के बैठकर सोचने की वर्तमान परिपाटी बिल्कुल त्याग कर सब मिल बैठकर समस्याओं का समाधान करें।

प्रश्न(3) श्री कृष्ण कुमार खन्ना, 41 महारणा प्रताप पार्क, स्पोर्ट्स कालोनी, मेरठ, यू.पी.

आपका पत्र प्रात हुआ था यह बात ठीक है कि सरकार के पास या उसके अधीन समाज संचालना के कम से कम विषय हों। उसके अनुसार ह नीतियां तय होनी चाहिये।

सरकार के तेजी से बढ़ते हुए विकराल रूप को बदलने की जरूरत हैं सरकार के अधिकार कम करने की जरूरत हैं गांव समाज, नगर समाज को और नागरिक अधिकारों को प्राप्त कर उसका सद् उपयोग कैसे करें, इस पर प्रकाश डाले। व्यक्ति को प्रकृति ने सर्वसत्ता सम्पन्न बनाया ही हैं उसमें पैदा होने वाली विकृति ही उसे सत्तहीन बना देती है। इस गिरावट को मनुष्य स्वयं भी रोक सकता है। जो रोक सकते है वे स्वयं भी सुखी रहते हैं, समाज को भी सुखी रखते है। अन्यथा समाज, गांव समाज या सरकार के हस्तक्षेप की पड़ती है।

उत्तरः—आप और मैं दानों एक ही स्कूल के विद्यार्थी रहे हैं। मुझमें और आपमें इतना ही अंतर है कि आपने अपना समय और शक्ति मेरे मार्गदर्शन देने में लगाइ और मैंने आपके समय और शक्ति का पूरा पूरा उपयोग किया। आप जैसा व्यक्तित्व रामानुजगंज के जंगल में मेरे साथ इतने दिन रहकर विचार मंथन करे यह कोई सामान्य घटना नहीं है। उसके बाद भी आपका समर्थन और विचार मंथन जारी रहा जो आज तक जारी है। आप प्रारंभ से ही अधिकारों के केन्द्रीयकरण के स्पष्ट विरोधी रहे हैं और अब भी हैं। मैं भी इस संबंध में इसी मत का हूँ। आपने भ्रष्टाचार को सारी समस्याओं का केन्द्र मानकर उसके विरूद्ध एक आंदोलन शुरू किया। आपके प्रयासों का मैं समर्थक रहा हूँ, सहयोगी नहीं क्योंकि मैं भ्रष्टाचार का समापन अधिकारों क विकेन्द्रीयकरण में अधिक सुविधाजनक पाता हूँ। आप अपना काम जारी रखिये। यदि कहीं मरे समर्थन की आवश्यकता हागी तो मुझे अपना ही मानकर आदेश करियेगा।

व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों पर मैने बहुत सोचा और अब तक सोचता रहता हूँ। व्यक्ति सर्वशक्तिमान पश्चिम के लोकतंत्र की सोच है जिसने समाज को इतना कमजोर कर दिया कि उच्श्रृंखलता पर नियंत्रण कठिन हो गया। समाज सर्वशक्तिमान भारत की सोच रही है जिसका दुरूपयोग करके साम्यवादियों ने सत्ता सर्वोच्च बना ली। मेरे विचार में आदर्श स्थिति वह है जिसमें व्यक्ति और समाज एक दूसर के पूरक, समन्वयक तथा नियंत्रक हों जिस तरह लोकतंत्र में कार्यपालिका न्यायपालिका तथा विधायिका के सम्बंध होते हैं। स्वामी दयानन्द जी ने आर्य समाज के दसवें नियम में इन सम्बन्धों का सूत्र दिया है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को व्यक्तिगत मामलों में निर्णय करने की पूर्ण स्वतंत्रता और सामाजिक मामलों में निर्णय करने में पूर्ण परतंत्रता हानी चाहिये ! दुःख है कि स्वामी जी के बाद आर्य समाज ही स्वामी जी के इस " सर्व समस्या समाधान सूत्र " को भुला बैठा। आप इस बात से चिन्तित हैं कि व्यक्ति इन अधिकारों का सदुपयोग कैसे करें। मैं सिर्फ इस बात से चिन्तित हूँ कि ये अधिकार आम नागरिकों को कैसे मिलें। आज देश का हर बुद्धिजीवी यह सोचता है कि आम लोग इस अधिकार का दुरूपयोग कर सकते हैं। स्वभावतः हर आदमी दूसरों को उसके अधिकार सौंपने के पूर्व ऐसे ही बहने ढूँढता है। अंग्रजों ने भी स्वतंत्रता के पूर्व गांधी जी के समक्ष ऐसी ही शंका व्यक्त की थी। लोग सदुपयोग करेंगे या दुरूपयोग और दुरूपयोग के स्थान पर सदुपयोग कैसे होगा यह विचार करने का समय तब आयेगा जब शासन से मुक्ति की संभावनाएँ कम से कम पचास प्रतिशत तक दिखने लगें। अभी तो ऐसी संभावना एक प्रतिशत से भी कम ही दिख रही है। मेरी इच्छा है कि अभी आप हमें इस संबंध में क्या करें और क्या न करें। यदि मेरा कोई सोच कोई कार्य व्यवहार इस प्रतिशत को उपर ले जाने में कही बाधक दिखे तो आपको पूरा पूरा अधिकार है कि आप मुझे इस संबंध में निर्देशित करें।

मंथन धर्मनिरपेक्षता

पंथ–निरपेक्षता पर चल रही बहस के बीच में जाने–माने चिंतक एस. गुरूमूर्ति की एक छोटी सी पुस्तक आई है। इसका शीर्षक आई है। इसका शीर्षक हैः 'इंटरनल इंडिया एंड द कांस्टीट्यूशन। यह छोटी सी पुस्तक पंथनिरपेक्षता की पीठिका और भारतीय संविधान और व्यवहार में उसकी भूमिका पर नया प्रकाश डालती है। कम लोगों ने ध्यान दिया है कि महात्मा गांधी ने सेकुलर या संकुलरिज्म जैसी अवधारणाओं का प्रयोग कभी नहीं किया था। यह अनायास न था। इसे समझने के लिये स्वयं सेकुजरिज्य की पृष्ठभूमि समझना आवश्यक है। महात्मा गांधी ता सभी धर्म विश्वासों को आदर देते थे, लेकिन यह सेकुलरिज्म से कोसों दूर एक नितांत हिन्दू भावना के तहत था। अब्राहमी मूल के ईसाई, इस्लामी आदि मत तो इसके ठीक विपरीत है। ये दूसर धर्म–विश्वासों के अस्तित्व को भी स्वीकार नहीं करते।

ईसाई और इस्लामी मत न केवल अपने धर्म–विश्वास की एक–एक चीज को पत्थर की लकीर मानते हैं, बल्कि दूसरे सभी धर्म–विश्वासों को 'शैतानी' या 'कुफ्र' कहकर नष्ट किए जाने योग्य करार देते हैं। सो यहाँ हिन्दू दृष्टि और ईसाई तथा इस्लामी दृष्टियों में आधारभूत विरोध है। गांधी जी हिन्दू और अब्राहमी मतों के बीच इस बुनियादी विरोध को बखूबी समझते थे। इसलिये विभिन्न धर्म–विश्वासों के प्रति राज्य की तटस्थता को वह अवांछनीय मानते थे। जब एक धर्म–विश्वास संगठित, आक्रामक, धर्मातरणकारी और प्रतियोगी शत्र–भाव सेलैस हो और दूसरा असंगठित, उदार तथा अन्य विश्वासों का सहज आदर करने वाला हो तब राज्य की तटस्थता भेड़िए और भेड़ के बीच की तटस्थता ही हो जाएगी। इसीलिये गांधी जी इस बिंदु पर राज्य का सक्रिय हस्तक्षेप जरूरी मानते थे, ताकि अब्राहमी मतों की आक्रामकता रोकी जाए। सेकुलरिज्म की ईसाई पृष्टभूमि से भी गांधी जी अच्छी तरह परिचित थे। भारतीय बुद्धिजीवियों

को बड़ी भारी गलतफहमी है कि यूरोप का सेकुलर राज्य विभिन्न धर्म विश्वासों के बीच धर्म–निरपेक्ष राज्यसत्ता था। यह सही नहीं है। इस सदर्भ में सच यही है कि वह ईसाई चर्च और ईसाई व्यक्ति के बीच ईसाई राज्य रहा है, जिसने संगठित चर्च के दबदबे से ईसाई व्यक्ति के स्वतंत्र रहने के अधिकार की गारंटी दी। उसने कभी विभिन्न धर्म–विश्वासों की समानता को मान्यता नहीं दी। इसलिये यूरोप की सेकुलर राज्य सत्ताएं दूसरे देशों में ईसाई धर्मातरण कारी अभियानों को भरपूर सहायता और बल पहूँचातो रही है। आज भी यही स्थिति है। अमेरिका या ब्रिटेन सेकुलर राज्य हैं, किन्तु वे अपने ईसाई मिशनरी संगठनो को एशिया, अफ्रीका में आक्रामक अभियान चलाने के लिए नियमित आर्थिक, कूटनीतिक सहायता देते हैं।

सेकुलरिज्म अपने मूल रूप में भी विभिन्न धर्म–विश्वास के लोगों के बीच तटस्थता नहीं है। दूसरी तरफ यदि भारत जैसे देश में राज्यसत्ता विभिन्न धर्म–विश्वासों के बीच तटस्थता अपनाए तो व्यवहार में इसका अर्थ हिंदूओं को असहाय छोड़ देना होगा। जब तक सभी धर्म–विश्वास अन्य धर्मों को मान्यता और आदर देना सिद्धांततः नहीं स्वीकारते तब तक राज्यसत्ता द्वारा संगठित अब्राहमी धर्म–विश्वासियों से असंगठित हिन्दुओं का बचाव आवश्यक है। भारत में हिन्दुओं की बहुसंख्या देखते हुए यह बात अटपटी लग सकती है, किन्तु सच यही है कि अंतरर्राष्ट्रीय रूप से सुसंगठित, साधन–सम्पन्न और कटिबद्ध ईसाई मिशनरियों व इस्लामी तबलीगियों के सामने भारत में हिन्दू असुरक्षित है। उड़ीसा, झारखंड, मध्यप्रदेश, नागालैण्ड, मणिपुर, कर्नाटक, केरल, जम्मू–कश्मिर आदि अनेक राज्यों से अक्सर आने वाले समाचारों पर ध्यान द। उनका अर्थ क्या है ? यही कि 'सेकुलर' राज्य का लाभ उठाकर यहाँ विदेशी मिशनरी संगठन हिन्दुओं को तरह–तरह के दबाव, प्रलोभन और छल से धर्मान्तरित कराते है। इस विषय स्थिति में सरकार तटस्थ रहती है और अपने बचाव के प्रयास में कभी–कभी हिन्दू क्षोम हिंसक रूप ले लेता है। तथा गांधी जी ने बिटिस राज्य में ईसाई मिशनरी संगठनों, कार्यकर्ताओं को अच्छी तरह देखा–समझा था। गांधी जी अन्य धर्म–विश्वासों के जानकार थे। इसीलिये वह स्वतंत्र भारत में हिन्दू धर्म क विरूद्ध ईसाई, इस्लामी अतिक्रमण को रोकने के लिए राज्य का हस्तक्षेप आवश्यक समझते थे, किन्तु दुर्भाग्यवश भारत का संविधान बनाते समय कोइ खुली बहस नहीं हुई और कुछ लोगों के निजी आग्रह के अनुसार सब कुछ तय कर दिया गया। राज्य को सेंकुलर चरित्र दे दिया जाना उन्हीं दुर्घटनाओं में से एक था।

समस्या यह है कि स्वभावतः सर्व–धर्म समभाव रखने के कारण अधिकांश हिन्दु जानते ही नहीं कि ऐसे मजहब भी हैं जो दूसरो के प्रति स्थाई दुश्मनी रखते हैं। उन्हें छल–बल से नष्ट करने के लिए सचेष्ट भी रहते हैं। उन्हें यह छल नहीं तो और क्या है कि भारतीय संविधान में हिन्दुओं से अधिक अधिकार प्राप्त रहने तथा संगठित होने के कारण शक्ति–सम्पन्न होने के बावजूद ईसाई व इस्लामी प्रवक्ता अपने 'कमजोर' हाने की झूठी भंगिमा बनाए रखते हैं? यह भंगिमा हिन्दुओं की अज्ञानता का लाभ उठाकर बनाई गई है। इस भंगिमा के आवरण में हिन्दू समाज पर अब्राहमी मतावलंबियों का आक्रमण चलता रहता है। समय के साथ वोट–बैंक के दबाव ने भारतीय राज्य को सेकुलर से भी बढ़ कर छद्म सेकुलर बना दिया है। ये राज्य सेकुलर रह कर भी हिन्दुओं के विरूद्ध अब्राहमी मतावलंबियों के खुले आक्रमण का मूक दर्शक था वह छद्म सेकुलर होकर आक्रमणकारियों को राजनीतिक, आर्थिक, वैचारिक सहायत पहुँचने वाला राज्य हो गया है। हिन्दू मानसिकता ऐसी है कि हिन्दू बुद्धिजीवी इस विषम स्थिति को देख कर भी नहीं देख पाते। अधिक से अधिक इसे नेताओं की राजनीति मान कर इसके गंभीर पहलूओं पर पर्दा डाल देते हैं। भूमंडलीय रूप से संगठित शक्तियों की दिलचस्पी और पर्दे के पीछे और सामने उनकी सक्रियता ने हिन्दुओं के लिए स्थिति को और विषम बना दिया है। जो रक्षात्मक है उसे ही दिन–रात आक्रामक बताया जाता है, जबकि आक्रामक मतावलंबी संगठन, समूह और उपके नेता ही अधिक से अधिक समर्थन और प्रोत्साहन पाते हैं। इस करण सेकुलरिज्म पर खुली बहस से बचा जाता है। विचार विमर्श और नीतियों में दोहरे मानदंड अपनाए जाते हैं। विभिन्न समुदायों के बीच पक्षपात किया जाता है। चुन–चुन कर नेताओं, लेखकों, धर्म–गुरूओं को प्रताडित किया जात है और इन सब मनमानियों को सेकुलरिज्म का जामा पहनाया जाता है।

भारतीय राजसत्ता ने पारंपरिक राजधर्म को तिलांजलि देकर हिन्दुओं को आक्रामक धर्म–विश्वासों के समक्ष अनाथों की तरह छोड़ दिया है। विडंबना यह है कि सेकुलरिज्म और यूरोपीय विचारों से चालित यह राज्यसत्ता मुख्यतः हिन्दू नेताओं के हाथों चलाई जा रही है। इससे स्थिति को ठोक–ठीक समझने–समझाने में भी विकट कठिनाई आती है, किन्तु स्थिति कितनी संकटपूर्ण है यह इसी से समझा जा सकता है कि आज भारत में हिन्दू बौद्धिक स्वर के नाम पर शून्यता दिखाई देती है। स्वयं महात्मा गांधी, विवेकानंद, रविद्रनाथ टैगोर, महर्षि अरविन्द आदि मनीषियों की बातें रखना भी 'सांप्रदायिक' कहलाने को आमंत्रण देना है।

धर्मनिरपेक्षता

आचार्य पंकज

धर्म निरपेक्षता, आधुनिक समाज की जरूरतों के आधार पर बनाई गयी धारणा है। दर्शन और धर्म के बीच गंभीर अंतर विरोध हैं। धर्म जहाँ बुद्धि के बजाय भावना पर बल देता है, साम्प्रदायिक निष्ठा की मांग करता है। वहाँ दर्शन बुद्धि पर बल देता है, मानवीय चेतना को स्वतंत्र चिंतन की दिशा में ले जाता हैं इसलिए धर्म निरपेक्षता कहीं आधुनिक अवधारणा के पक्ष में जाती है। जब हम कहते हैं– आधुनिक समाज में मानवीय चेतना धर्म निरपेक्ष हो रही है। धर्म निरपेक्षता लोकातीत से लोक की ओर भ्रान्ति से ज्ञान की ओर, परतंत्रता से स्वतंत्रता की ओर मनुष्य के लम्बे अभियान के दौरान निर्मित विश्व दृष्टि की एक धारणा है। धर्म निरपेक्षता धर्म के प्रति तटस्थता का रूप नहीं अपनाती। वह अपने को धार्मिक विश्व दृष्टि के विरोध में सक्रिय रूप से स्थापित करने की ओर अग्रसर होती हैं इसलिये किसी व्यक्ति या समूह के बारे मं कथन सत्य नहीं कि वह धर्म निरपेक्ष और धार्मिक एक साथ है। जो व्यक्ति खुद किसी धर्म में निष्ठा रखता है वह दूसरे धर्मों के प्रति निरपेक्ष हो सकता है। धर्म के प्रति आम तौर से निरपेक्ष हो सकता है। धर्म निरपेक्षता और धार्मिकता परस्पर विरोधी धारणायें हैं।

यहाँ हम धर्म निरपेक्षता की दूसरी गौण धारणा पर आते है। इसके अनुसार विभिन्न धर्मों के सन्दर्भ में राज्य, धर्म निरपेक्ष होता है। असल में यह धारणा भी कैथोलिक प्रोटेस्टेंट और यहूदी आदि विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों या धर्मों के परस्पर संघर्ष के सन्दर्भ में पहले पहल यूरोप में विकसित हुयी। राजनीतिक धारणा के रूप में धर्म को न अपनायेगा न उसे संरक्षण देगा, धर्म को सामाजिक लौकिक जीवन में हस्तक्षेप करने से रोकेगा और खुद किसी व्यक्ति के धार्मिक विश्वासों में दखल नहीं देगा। इसका अर्थ हुआ कि राज्य जिस विचार धारा के आधार पर काम करेगा, वह धार्मिक नहीं होगा। और वह धर्म को प्रोत्साहित करने के बजाय धर्म निरपेक्षता के मूल्यों का प्रचार कर इसे निरूत्साहित करेगा। सच्चे मायनों में धर्म निरपेक्ष राज्य वही हो सकता है जो शोषण दमन और परतंत्रता की व्यवस्था का अन्त करने में सक्रिय हो, सामाजिक जीवन में धर्म का हस्तक्षेप न होने देता हो, और व्यक्ति की धार्मिक मान्यताओं के मामले में शक्ति का इस्तेमाल किये बगैर धर्म निरपेक्ष या यर्थाथपरक विचारों और मूल्यों के प्रचार–प्रसार के जरिये उन्हें भ्रान्त चेतना से मुक्त होने में सक्रिय मदद करता हो।

मेरे ख्याल से ऐसा एक समाजवादी राज्य ही कर सकता है। इसलिये धर्म निरपेक्षता समाजवादी राज्य की धारणा का अभिन्न अंग है। आधुनिक भारत में धर्म निरपेक्षता की स्थिति बहुत नाजुक दिखाई पड़ती है,? कई बड़े विचारक और नेता वेदान्त को भारतीय प्रतिभा का चरम शिखर मानते थे, दर्शन के क्षेत्र में साम्प्रदायिक रूख अपनाते थे। गांधी कभी भी धर्म के प्रति निरपेक्षता का भाव नहीं रखते

थे। वह हिन्दू धर्म के खुले उपासक थे, दर्शन के क्षेत्र में साम्प्रदायिक रूख अपनाते थे, और अपनी दैनिक प्रार्थना में ईश्वर और अल्लाह को समान रूप से पुकारते थे। पं. नेहरू ने जरूर एक हद तक धर्म निरपेक्ष की दृष्टि अपनायी, लेकिन वे भी समय–समय पर धार्मिक मान्यताओं और संस्थाओं को बढ़ावा देते थे। चुनाव की राजनीति ने साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया है। धर्म की साम्प्रदायिकता क नाम पर भारत–विभाजन की त्रासदी घटित होने के पश्चात् भारतवर्ष में हिन्दी–हिन्दू और हिन्दूस्तान की धुर साम्प्रदायिक चेतना को लगातार प्रश्रय मिला है। शासक वर्ग की तथाकथित धर्म निरपेक्षता ने पंजाब में हिन्दू और सिख के बीच, सिख और सिख के बीच, हिन्दू और मुसलमान के बीच, मुसलमान और मुसलमान के बीच और हिन्दू और हिन्दू के बीच साम्प्रदायिक खून खराबे का स्वरूप ग्रहण कर लिया है। कुल मिलाकर धर्म निरपेक्षता हमारे समाज की आम विचार–व्यवहार का न अंग बन पायी है और न राज्य उसे सही मायनों में बनने दे रहा है। यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। अगर हम इस पर काबू पाना चाहते हों तो हमें पूरी दृढ़ता के साथ इहलौकिक और बुद्धिवादी विचारधारा का आंदोलन चलाना होगा, उसे जनता के एक नये किस्म के मुक्ति आन्दोलन से जोड़ना होगा। उसे मुक्ति चाहिए। जीवन से नहीं। जीवन में। इसी जीवन में। इसो दुनिया में मुक्ति चाहिए।

धर्मनिरपेक्षता बनाम पंथ निरपेक्षता

बजरंगलाल

धर्म और पंथ शब्दों के भावार्थ और शब्दार्थ का विवाद आज का नया नहीं है। दुनियां में सदा से होता आया है कि ऐसे सम्मानित शब्दों का भिन्न अर्थों में प्रयोग करते करते उस भावार्थ और शब्दार्थ में भिन्न भिन्न बना दिया जाय। वर्तमान समय में धर्म का शब्दार्थ है गुणप्रधान और भावार्थ है पहचान प्रधान। वास्तव में धर्म के सांगठनिक स्वरूप को पंथ या सम्प्रदाय कहा जाना चाहिये था किन्तु यह परिपाटी रही है कि प्रारंभ में पचास सौ वषा तक सम्प्रदाय रहता है। यदि वह उसके बाद भी जीवित रहा और प्रगति करता रहा तो धीरे–धीरे स्वयं को धर्म कहने लगता है भले ही उसकी कार्य प्रणाली से धर्म के वास्तविक स्वरूप का संबंध रहे या नहीं।

इस्लाम एक संगठन था जो धीरे धीरे धर्म बन गया। इसाई पंथ था वह भी धर्म बन गया। जैन और बौद्ध धर्म और पंथ के बीच की स्थिति में है। सिख भी धर्म और संगठन के बीच चल रहा है। आर्य समाज विस्तार के अभाव में धर्म की ओर अपनी पहचान नहीं बना सका। हिन्दुओं में भी संगठन प्रधान परिभाषाएँ धर्म की वास्तविक परिभाषा को पहचान प्रधान बनाने की जो तोड़ कोशिश कर रही है। धर्म की गुण प्रधान परिभाषा को यदि आधार बनाया जाय तो अपराधियों को छोड़कर कोई अन्य धर्म निरपेक्ष हो ही नहीं सकता किन्तु यदि धर्म की पहचान प्रधान परिभाषा को आधार माने तो ऐसे धर्मो का कुछ स्वरूप तटस्थ और शेष बहुत सा घातक हो जाता है। ऐसे संगठन प्रधान धर्म के तटस्थ स्वरूप के मामले में हमें धर्म निरपेक्ष होना चाहिये।

धर्म के विस्तार के तीन मार्ग पाये जाते हैं (1) विचार प्रसार, (2) लोभ लालच (3) छल कपट या शक्ति। विचार प्रसार द्वारा धर्म प्रचार आदर्श स्थिति है जिसमें धर्म निरपेक्षता उचित है। लोभ लालच से संख्या विस्तार के प्रयत्न अनुचित होते हुए भी सहन किये जा सकते हैं क्योंकि लोभ लालच से होने वाले धर्म परिवर्तन में हमारी सामाजिक कमजोरियों का भी बहुत बड़ा योगदान होता है। ऐसे मामलों में भी धर्म निरपेक्षता हमारी मजबूरी है। किन्तु छल कपट या बल प्रयोग से धर्म के नाम पर संख्या विस्तार के प्रयत्नों में धर्मनिरपेक्षता बिल्कुल गलत भी है और अन्याय भी। ऐसी स्थिति की भेड़ और भेड़िये के बीच तटस्थता की नीति से तुलना को मैं उचित मानता हूँ। गांधी जी के धर्म संबंधी विचारों पर पंकज जी शंकर जी और मैं एक मत हैं किन्तु भारत में बड़ी संख्या में ऐसे भी लोग हैं जो गांधी नाम सुनते ही भेड़िये और भेड़ के समान गांधी पर टूट पड़ते हैं। ऐसे लोगों के संबंध में गुरूमूर्ति जी या एस. शंकर जी के विचारों की भी जानकारी आवश्यक है। यदि ऐसे लोग स्वयं को धर्म प्रधान कहें और विशेषकर हिन्दू धर्म रक्षक घोषित करें तो या तो वे धर्म को नहीं जानते या गांधी को नहीं जानते। ऐसे लोगों से तो वे लोग अधिक अच्छे हैं जो गांधी को धर्म निरपेक्ष मान लेत हैं।

संगठन का स्वाभाविक चरित्र होता है कि वह मजबुत अत्याचारियों से सुरक्षा के नाम पर बनाया जाता है और आम तौर पर कमजोरों का शोषण करता है। मेरी नजर में कोई संगठन नहीं दिखता जिसमें कम या अधिक उपरोक्त दुर्गुण न हो। मेरी हार्दिक इच्छा है कि धर्म को धर्म ही रहने दें, संगठन का स्वरूप न दें। यदि किसी धर्म ने ऐसा किया भी है तो उस पर नियंत्रण के प्रयत्न करने के स्थान पर अपने धर्म को संगठन का सवरूप देना धर्म के साथ अन्याय होगा। इसी रूप में धर्म और धर्मनिरपेक्षता को देखना उचित होगा।

श्री सुनील एक्का, दिल्ली

ज्ञानयज्ञ मण्डल तथा, व्यवस्था परिवर्तन अभियान का संगठनात्मक स्वरूप और कार्य क्या होगा ?

उत्तर– ज्ञानयज्ञ मण्डल के तीन कार्य होंगे।

(1) समाज और शासन के सम्पूर्ण संबंधों पर गंभीर विचार मंथन करते हुए उसे किसी निश्चित निष्कर्ष तक पहुँचाने हेतु लोक संविधान सभा का गठन और सक्रियता।

(2) चार सूत्रीय संविधान संशोधन अभियान का अगले तीन वर्षो में निर्णायक स्थिति में पहुँचाने में व्यवस्था परिवर्तन अभियान तथा लाक स्वराज्य मंच की सहायता।

(3) श्रम और बुद्धि के बीच असंतुलन को संतुलित करने के प्रयास में श्रम शोषण मुक्ति अभियान की सहायता।

ज्ञान यज्ञ मण्डल का संस्थापक मैं (बजरंगलाल) हूँ। ज्ञान यज्ञ मण्डल की एक सलाहकार समिति होगी जिसमें दस से पंद्रह तक सदस्य होंगे।

वर्तमान में इस समिति में निम्नलिखित सदस्य हैं – (1) श्री अशोक भाई जी, (2) श्री आचार्य पंकज जी, (3) श्री राजनाथ पांडे, (4) श्री अब्दल भाई तमिलनाडु, (5) श्री कृष्ण कुमार रूँगटा, धनबाद (6) श्री अरूण कुमार, सर्वसेवा संघ वाराणसी, (7) श्री अशोक त्रिपाठी, आर्य समाज वाराणसी, (8) श्री ओम प्रकाश दुबे, संयोजक, श्रम शोषण मुक्ति अभियान, (9) श्री रामकृष्ण पौराणिक उज्जैन, (10) श्री आर्यभूषण भारद्वाज। ज्ञान यज्ञ मण्डल की एक सौ तथा एक हजार लोगों की समिति भी बनाई जायगी।

व्यवस्था परिवर्तन अभियान का दस से पंद्रह सदस्यों का एक संयोजक मंडल, एक सौ सदस्यों की एक प्रबंध समिति और एक हजार सदस्यों की एक नियंत्रण समिति होगी। व्यवस्था परिवर्तन अभियान संबंधी सभी निर्णय करने के लिये यह समिति स्वतंत्र होगी। वर्तमान संयोजक (बजरंगलाल) यदि किसी निर्णय से सहमत नहीं होंगे तो वे एक सौ लोगों की प्रबंध समिति की बैठक बुलाकर उसमें उक्त मुद्दे को रख सकते हैं। इस समिति का निर्णय सबको मान्य होगा। वर्तमान में संयाजक मंडल में (1) श्री अशोक भाई जी, (2) श्री आचार्य पंकज जी, (3) श्री राजनाथ पांडे जी, (4) श्री अब्दुल भाई जी, (5) श्री रूँगटा जी, (6) श्री अरूण कुमार जी, (7) श्री अशोक त्रिपाठी, (8) श्री सुनील एक्का, (9) श्री रामकृष्ण पौराणिक जी होंगे। श्री कैलाश श्रीवास्तव, व्यवस्था परिवर्तन अभियान के राष्ट्रीय महासचिव रहेंगे। श्री आर्यभूषण जी, श्री अर्पित अनाम जी, तथा श्री बंशीवाल जी लोक स्वराज्य मंच का कार्य विस्तार करेंगे।

श्री ओम प्रकाश दुबे श्रम शोषण मुक्ति अभियान के राष्ट्रीय संयोजक है। वे इस विषय में आगे का गठन स्वतंत्र रूप से करेंगे। सभी समितियों के 1/5 सदस्य हर छः माह में अनिवार्य रूप से बदल जावेंगे।

(4) श्री कृष्ण चन्द्र जी सहाय, गांधी शान्ति प्रतिष्ठान केन्द्र, आगरा, उ.प्र.

ज्ञान तत्व एक सौ तेरह पूरा पढ़ा। बहुत ही अच्छा लगा। काश आपका सपना साकार हो जाता। यदि आप सर्वोदय और संघ से संबंधित घटनाओं का जिक्र नहीं करते तो अच्छा होता। गांधी और मार्क्स ने अपनी पुस्तकों में दर्शन प्रस्तुत किया था। गांधी जी ने कहा था कि जीवन ही मेरा संदेश है।

आप जिस दिशा में और जिस प्रकार आगे बढ़ रहे हैं उसका मैं प्रशंसक हूँ क्योंकि मैं सदैव गांधी की अहिंसा का पक्षधर रहा। आप मुझे अपने साथ समझें। विचारों में कहीं कहीं भिन्नता समर्थन और सहयोग में बाधा नहीं बनेगी।

उत्तर– आपने गांधी का कथन उधृत किया कि "जीवन ही मेरा संदेश" है। मेरे विचार में इसके ठीक विपरित "संदेश ही मेरा जीवन" है व्यवहारिक लगता है। न गांधी जी गलत थे न मैं। कार्य प्रणाली परिस्थितियों पर निर्भर करती है। गांधी जी ने पहले अपने विचारों का जीवन में उतारा और तब उसे समाज के समक्ष संदेश के रूप में प्रस्तुत किया क्योंकि उस समय तानाशाही होने के कारण विचार मंथन की अपेक्षा क्रिया की अधिक आवश्यकता थी। गांधी जी ने अपने संदेश का प्रारंभ ही ट्रेन की यात्रा के टकराव से किया जो उनका अहिंसक संघर्ष था। वर्तमान सामाजिक राजनैतिक परिस्थितियॉ संघर्ष से प्रारंभ करके संदेश तक जाने की नहीं है क्योंकि अभी भारत में तानाशाही न होकर लोकतंत्र है। मैने पहले विचार मंथन किया। स्वयं के विचारों को अन्तिम न मानकर उन्हें समाज के समक्ष प्रस्तुत किया। कई विचार मंथन के बाद बदले भी। उसके बाद मैंने उन विचारों को आचरण में उतारना शुरू किया। मैंने गांधी जी के जीवन से प्रभावित होकर सत्य और अहिंसा का मार्ग नहीं चुना हैं। मैंने सत्य और अहिंसा को बहुत विचार मंथन के बाद स्वीकार किया है। मुझे खुशी है कि गांधी जी ने अपने जीवन से यह संदेश बहुत पहले ही दे दिया था जिसे मैं इतनी देर से इतनी कसरत करके समझ सका।

मैं शराब पीने बनाने बेचने पर सरकारी पतिबंध के विरूद्ध हूँ। मेरा विचार है कि व्यक्तिगत मामलों में निर्णय का अंतिम अधिकार व्यक्ति को और पारिवारिक मामलों में परिवार को होना चाहिये। जो लोग ऐसे अधिकारों का अतिक्रमण करते हैं वे अपराध करते हैं भले ही उनका अतिक्रमण कानून सम्मत ही क्यों न हो। दो पड़ोसी हैं। एक शराब पीता है तो हम उसे बलपूर्वक रोकते हैं कि शराब पीना बुरा है। हम यज्ञ मे आहुति देते हैं तो वह भूखा पड़ोसी हमें नहीं रोक सकता क्योंकि घी, तेल जलाना वायु शुद्ध करता है। क्या ठीक है, क्या गलत इसका निर्णय हमारा पड़ोसी न अपने विषय में कर सकता है न पड़ोसी के विषय में। यह एकाधिकार गलत है और इस आधार पर बनने वाले कानून अपराध हैं उल्लंघन कर्ता नहीं। मैंने गांधी को समझा गांधीवादियों को नहीं जिन्होंने सामान्यता व्यवस्था से अहिंसक संघर्ष का मार्ग छोड़कर संघ विरोध को ही एकमात्र कार्यक्रम मान लिया। मैने स्वामी दयानन्द को समझा आर्य समाज को नहीं जिनकी सारी शक्ति वर्तमान व्यवस्था की गुलामी से मुक्ति में न लगकर या तो आपसी संघर्ष में लगी है अथवा गुलामी में ही सुखी जीवन जीने की कला विकसित करने में। मैंने हेडगेवार जी को समझा है, संघ को नहीं जो स्वदेशी संवैधानिक व्यवस्था के स्थान पर स्वदेशी साबुन और स्वदेशी शीतल पेय का संघर्ष छेड़ते हैं। इतना ही नहीं। मैंने मार्क्स और माओं को भी खूब समझा है जिनके मन में श्रम शोषण के विरूद्ध ज्वाला जलती रहती थी न कि उनके अनुयायी साम्यवादियों को जो सामान्यतया दिन राज बुद्धिजीवियों के एजेन्ट के रूप में श्रम शोषण के नये नये तरीकों की खोज में लगे रहते हैं। मैंने सभी महापुरूषों के विचार और उनके अनुयायियों द्वारा किये जा रहे उनके विचारों के दुरूपयोग को ही पहले विचार मंथन द्वारा समझा और तब उस पर आचरण किया।

मैंने मेरे सपनों का भारत शीर्षक अंक में जिन दो घटनाओं का संघ और सर्वोदय के संबंध में उल्लेख किया है वह उचित थी या नहीं यह विचार किसी रणनीति के अंतर्गत गुण दोष का आंकलन करके हो सकता है। पहली बात है कि हम संघ और सर्वोदय के नाम उल्लिखित घटनाओं की सत्यता की परीक्षा करें। यदि ये घटनाएँ सत्य हैं तो संघ और सर्वोदय को इस प्रकटीकरण का बुरा मानने की अपेक्षा आत्मनिरीक्षण करना चाहिये। मैं यह स्पष्ट रूप से कह सकता हूँ कि मेरे सम्पूर्ण सरसठ वर्ष के जीवन में एक भी ऐसा कार्य नहीं है जिसके प्रकटीकरण से मेरा जीवन विवादास्पद हो। मैने समाज में अपनी छवि वैसी ही बनने दी है जैसा मैं हूँ। सत्य के प्रगटीकरण से कभी भी गांधी जी को बुरा नहीं लगा क्योंकि सत्य को उन्होंने अपने जीवन में उतारा था। दूसरी बात यह है कि संघ और सर्वोदय के मुट्ठीभर लोगों की वैचारिक संकीर्णता सामाजिक एकता में बहुत बाधक है। वर्तमान शासन व्यवस्था की शक्ति कई गुना अधिक होते हुए भी इस इसलिये कमजोर हैं क्योंकि समाज के सभी अच्छे लोग आपस में ही कुछ गुटों में बंटकर एक दूसरे के खिलाफ लड़ते भिड़ते रहते हैं। ऐसे गुटों के सामान्य कार्यकर्ता तो ऐसे टकरावों से वर्तमान व्यवस्था को मिलने वाली आक्सीजन से वाकिफ नहीं। इन कार्यकर्ताओं को बाड़ा प्रमुख वर्तमान व्यवस्था से करोड़ों अरबों का दान लेने की जोगाड़ में लगे रहते हैं जिससे उनकी संस्थाओं का खर्च चलता रहे। जिन संस्थाओं के हाथों जहॉ की सत्ता की बागडोर है वे वहॉ से बड़ी बेशर्मी से मदद लेने में लगी है। मेरी पहले यह धारणा थी कि संघ समर्थित संस्थाएँ और शिशु मंदिर तो कभी सरकारी अनुदान नहीं लेते किन्तु पिछले दो तीन वर्षो में उन्होंने जिस बेदर्दी से सरकारी धन संपत्ति प्राप्त की उससे मेरे विश्वास को बल मिला कि सारा त्याग सत्ता की प्रतीक्षा तक ही दिखता है। मैंने दो घटनाओं का उल्लेख किया वह इस रणनीति का एक हिस्सा है कि ऐसे संगठनों को या तो आपसी घृणा वैमनस्य से हटकर गुण दोष के आधार पर एक दूसरे का समर्थन और विरोध करना चाहिये अन्यथा इन संस्थाओं के निःस्वार्थ कार्यकर्ताओं को धीरे–धीरे आपसी संबंध इस तरह बनाने चाहिये कि वर्तमान आपराधिक व्यवस्था के विरूद्ध सब सज्जन शक्ति एकजुट हो जावे।

मैं पूरी तरह आश्वस्त हूँ कि भारत की सभी समस्याओं के समाधान का तत्काल प्रारंभ यही हो सकता है कि संघ, सर्वोदय, गायत्री परिवार, और आर्य समाज के न्यूनतम पांच–पांच लोग एक साथ बैठकर चर्चा करने के लिये तैयार हो जावें। ये चार तथा कुछ अन्य संगठन भी यदि जनहित में ऐसा करें तो अच्छा होगा। यही सोचकर मैंने अंक एक सौ तेरह में कुछ घटनाओं का उल्लेख किया है। अतीत को सम्मान, वर्तमान को समाधान तथा भविष्य की दिशा तय करने का आह्वान करते हुए मेरा आपसे आग्रह है कि आप सब इस योजना के क्रियान्वयन में सहयोग करें।